बारात का जनकपुर में आना और स्वागतादि

चौपाई :

*** कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा॥ भरे सुधा सम सब पकवाने। नाना भाँति न जाहिं बखाने॥1॥

भावार्थ:

(दूध, शर्बत, ठंडाई, जल आदि से) भरकर सोने के कलश तथा जिनका वर्णन नहीं हो सकता ऐसे अमृत के समान भाँति-भाँति के सब पकवानों से भरे हुए परात, थाल आदि अनेक प्रकार के सुंदर बर्तन,॥1॥

*** फल अनेक बर बस्तु सुहाईं। हरषि भेंट हित भूप पठाईं॥ भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना॥2॥

भावार्थ:

उत्तम फल तथा और भी अनेकों सुंदर वस्तुएँ राजा ने हर्षित होकर भेंट के लिए भेजीं। गहने, कपड़े, नाना प्रकार की मूल्यवान मणियाँ (रत्न), पक्षी, पशु, घोड़े, हाथी और बहुत तरह की सवारियाँ,॥2॥

*** मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए॥ दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥3॥

भावार्थ:

तथा बहुत प्रकार के सुगंधित एवं सुहावने मंगल द्रव्य और शगुन के पदार्थ राजा ने भेजे। दही, चिउड़ा और अगणित उपहार की चीजें काँवरों में भर-भरकर कहार चले॥3॥

*** अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भर गाता॥ देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना॥4॥

भावार्थ:

अगवानी करने वालों को जब बारात दिखाई दी, तब उनके हृदय में आनंद छा गया और शरीर रोमांच से भर गया। अगवानों को सज-धज के साथ देखकर बारातियों ने प्रसन्न होकर नगाड़े बजाए॥4॥

दोहा :

*** हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल। जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल॥305॥

भावार्थ:

(बाराती तथा अगवानों में से) कुछ लोग परस्पर मिलने के लिए हर्ष के मारे बाग छोड़कर (सरपट)

दौड़ चले और ऐसे मिले मानो आनंद के दो समुद्र मर्यादा छोड़कर मिलते हों॥305॥

चौपाई :

*** बरषि सुमन सुर सुंदरि गावहिं। मुदित देव दुंदुभीं बजावहिं॥ बस्तु सकल राखीं नृप आगें। बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें॥1॥

भावार्थ:

देवसुंदरियाँ फूल बरसाकर गीत गा रही हैं और देवता आनंदित होकर नगाड़े बजा रहे हैं। (अगवानी में आए हुए) उन लोगों ने सब चीजें दशरथजी के आगे रख दीं और अत्यन्त प्रेम से विनती की॥1॥

*** प्रेम समेत रायँ सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥ करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुँ चले लवाई॥2॥

भावार्थ:

राजा दशरथजी ने प्रेम सहित सब वस्तुएँ ले लीं, फिर उनकी बख्शीशें होने लगीं और वे याचकों को दे दी गईं। तदनन्तर पूजा, आदर-सत्कार और बड़ाई करके अगवान लोग उनको जनवासे की ओर लिवा ले चले॥2॥

*** बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनदु धन मदु परिहरहीं॥ अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा॥3॥

भावार्थ:

विलक्षण वस्त्रों के पाँवड़े पड़ रहे हैं, जिन्हें देखकर कुबेर भी अपने धन का अभिमान छोड़ देते हैं। बड़ा सुंदर जनवासा दिया गया, जहाँ सबको सब प्रकार का सुभीता था॥3॥

*** जानी सियँ बरात पुर आई। कछु निज महिमा प्रगटि जनाई॥ हृदयँ सुमिरि सब सिद्धि बोलाईं। भूप पहुनई करन पठाईं॥4॥

भावार्थ:

सीताजी ने बारात जनकपुर में आई जानकर अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलाई। हृदय में स्मरणकर सब सिद्धियों को बुलाया और उन्हें राजा दशरथजी की मेहमानी करने के लिए भेजा॥4॥

दोहा :

*** सिधि सब सिय आयसु अकनि गईं जहाँ जनवास। लिएँ संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास॥306॥

भावार्थ:

सीताजी की आज्ञा सुनकर सब सिद्धियाँ जहाँ जनवासा था, वहाँ सारी सम्पदा, सुख और इंद्रपुरी के भोग-विलास को लिए हुए गईं॥306॥

चौपाई :

*** निज निज बास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥ बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥1॥

भावार्थ:

बारातियों ने अपने-अपने ठहरने के स्थान देखे तो वहाँ देवताओं के सब सुखों को सब प्रकार से सुलभ पाया। इस ऐश्वर्य का कुछ भी भेद कोई जान न सका। सब जनकजी की बड़ाई कर रहे हैं॥1॥

*** सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदयँ हेतु पहिचानी॥ पितु आगमनु सुनत दोउ भाई। हृदयँ न अति आनंदु अमाई॥2॥

भावार्थ:

श्री रघुनाथजी यह सब सीताजी की महिमा जानकर और उनका प्रेम पहचानकर हृदय में हर्षित हुए। पिता दशरथजी के आने का समाचार सुनकर दोनों भाइयों के हृदय में महान आनंद समाता न था॥2॥

*** सकुचन्ह कहि न सकत गुरु पाहीं। पितु दरसन लालचु मन माहीं॥ बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु बिसेषी॥3॥

भावार्थ:

संकोचवश वे गुरु विश्वामित्रजी से कह नहीं सकते थे, परन्तु मन में पिताजी के दर्शनों की लालसा थी। विश्वामित्रजी ने उनकी बड़ी नम्रता देखी, तो उनके हृदय में बहुत संतोष उत्पन्न हुआ॥3॥

*** हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥ चले जहाँ दसरथु जनवासे। मनहुँ सरोबर तकेउ पिआसे॥4॥

भावार्थ:

प्रसन्न होकर उन्होंने दोनों भाइयों को हृदय से लगा लिया। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। वे उस जनवासे को चले, जहाँ दशरथजी थे। मानो सरोवर प्यासे की ओर लक्ष्य करके चला हो॥4॥

दोहा :

*** भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत। उठे हरषि सुखसिंधु महुँ चले थाह सी लेत॥307॥

भावार्थ:

जब राजा दशरथजी ने पुत्रों सहित मुनि को आते देखा, तब वे हर्षित होकर उठे और सुख के समुद्र में थाह सी लेते हुए चले॥307॥

चौपाई :

*** मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा॥ कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई॥1॥

भावार्थ:

पृथ्वीपति दशरथजी ने मुनि की चरणधूलि को बारंबार सिर पर चढ़ाकर उनको दण्डवत्‌ प्रणाम किया। विश्वामित्रजी ने राजा को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल पूछी॥1॥

*** पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई॥ सुत हियँ लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे॥2॥

भावार्थ:

फिर दोनों भाइयों को दण्डवत्‌ प्रणाम करते देखकर राजा के हृदय में सुख समाया नहीं। पुत्रों को (उठाकर) हृदय से लगाकर उन्होंने अपने (वियोगजनित) दुःसह दुःख को मिटाया। मानो मृतक शरीर को प्राण मिल गए हों॥2॥

*** पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम मुदित मुनिबर उर लाए॥ बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाईं। मनभावती असीसें पाईं॥3॥

भावार्थ:

फिर उन्होंने वशिष्ठजी के चरणों में सिर नवाया। मुनि श्रेष्ठ ने प्रेम के आनंद में उन्हें हृदय से लगा लिया। दोनों भाइयों ने सब ब्राह्मणों की वंदना की और मनभाए आशीर्वाद पाए॥3॥

*** भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥ हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥4॥

भावार्थ:

भरतजी ने छोटे भाई शत्रुघ्न सहित श्री रामचन्द्रजी को प्रणाम किया। श्री रामजी ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। लक्ष्मणजी दोनों भाइयों को देखकर हर्षित हुए और प्रेम से परिपूर्ण हुए शरीर से उनसे मिले॥4॥

दोहा :

*** पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत। मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपाल बिनीत॥308॥

भावार्थ:

तदन्तर परम कृपालु और विनयी श्री रामचन्द्रजी अयोध्यावासियों, कुटुम्बियों, जाति के लोगों, याचकों, मंत्रियों और मित्रों सभी से यथा योग्य मिले॥308॥

*** रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी॥ नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी॥1॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी को देखकर बारात शीतल हुई (राम के वियोग में सबके हृदय में जो आग जल रही थी, वह शांत हो गई)। प्रीति की रीति का बखान नहीं हो सकता। राजा के पास चारों पुत्र ऐसी शोभा पा रहे हैं, मानो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष शरीर धारण किए हुए हों॥1॥

चौपाई :

*** सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी॥ सुमन बरिसि सुर हनहिं निसाना। नाकनटीं नाचहिं करि गाना॥2॥

भावार्थ:

पुत्रों सहित दशरथजी को देखकर नगर के स्त्री-पुरुष बहुत ही प्रसन्न हो रहे हैं। (आकाश में) देवता फूलों की वर्षा करके नगाड़े बजा रहे हैं और अप्सराएँ गा-गाकर नाच रही हैं॥2॥

*** सतानंद अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुष बंदीजन॥ सहित बरात राउ सनमाना। आयसु मागि फिरे अगवाना॥3॥

भावार्थ:

अगवानी में आए हुए शतानंदजी, अन्य ब्राह्मण, मंत्रीगण, मागध, सूत, विद्वान और भाटों ने बारात सहित राजा दशरथजी का आदर-सत्कार किया। फिर आज्ञा लेकर वे वापस लौटे॥3॥

*** प्रथम बरात लगन तें आई। तातें पुर प्रमोदु अधिकाई॥ ब्रह्मानंदु लोग सब लहहीं। बढ़हुँ दिवस निसि बिधि सन कहहीं॥4॥

भावार्थ:

बारात लग्न के दिन से पहले आ गई है, इससे जनकपुर में अधिक आनंद छा रहा है। सब लोग ब्रह्मानंद प्राप्त कर रहे हैं और विधाता से मनाकर कहते हैं कि दिन-रात बढ़ जाएँ (बड़े हो जाएँ)॥4॥

*** रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज। जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज॥309॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी और सीताजी सुंदरता की सीमा हैं और दोनों राजा पुण्य की सीमा हैं, जहाँ-तहाँ जनकपुरवासी स्त्री-पुरुषों के समूह इकट्ठे हो-होकर यही कह रहे हैं॥309॥

चौपाई :

*** जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही॥ इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे। काहुँ न इन्ह समान फल लाधे॥1॥

भावार्थ:

जनकजी के सुकृत (पुण्य) की मूर्ति जानकीजी हैं और दशरथजी के सुकृत देह धारण किए हुए श्री रामजी हैं। इन (दोनों राजाओं) के समान किसी ने शिवजी की आराधना नहीं की और न इनके समान किसी ने फल ही पाए॥1॥

*** इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥ हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी॥2॥

भावार्थ:

इनके समान जगत में न कोई हुआ, न कहीं है, न होने का ही है। हम सब भी सम्पूर्ण पुण्यों की राशि हैं, जो जगत में जन्म लेकर जनकपुर के निवासी हुए॥2॥

*** जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेषी॥ पुनि देखब रघुबीर बिआहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥3॥

भावार्थ:

और जिन्होंने जानकीजी और श्री रामचन्द्रजी की छबि देखी है। हमारे सरीखा विशेष पुण्यात्मा कौन होगा! और अब हम श्री रघुनाथजी का विवाह देखेंगे और भलीभाँति नेत्रों का लाभ लेंगे॥3॥

*** कहहिं परसपर कोकिलबयनीं। एहि बिआहँ बड़ लाभु सुनयनीं॥ बड़ें भाग बिधि बात बनाई। नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाई॥4॥

भावार्थ:

कोयल के समान मधुर बोलने वाली स्त्रियाँ आपस में कहती हैं कि हे सुंदर नेत्रोंवाली! इस विवाह में बड़ा लाभ है। बड़े भाग्य से विधाता ने सब बात बना दी है, ये दोनों भाई हमारे नेत्रों के अतिथि हुआ करेंगे॥4॥

दोहा :

*** बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय। लेन आइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय॥310॥

भावार्थ:

जनकजी स्नेहवश बार-बार सीताजी को बुलावेंगे और करोड़ों कामदेवों के समान सुंदर दोनों भाई सीताजी को लेने (विदा कराने) आया करेंगे॥310॥

चौपाई :

*** बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई॥ तब तब राम लखनहि निहारी। होइहहिं सब पुर लोग सुखारी॥1॥

भावार्थ:

तब उनकी अनेकों प्रकार से पहुनाई होगी। सखी! ऐसी ससुराल किसे प्यारी न होगी! तब-तब हम सब नगर निवासी श्री राम-लक्ष्मण को देख-देखकर सुखी होंगे॥1॥

*** सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥ स्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए॥2॥

भावार्थ:

हे सखी! जैसा श्री राम-लक्ष्मण का जोड़ा है, वैसे ही दो कुमार राजा के साथ और भी हैं। वे भी एक श्याम और दूसरे गौर वर्ण के हैं, उनके भी सब अंग बहुत सुंदर हैं। जो लोग उन्हें देख आए हैं, वे सब यही कहते हैं॥2॥

*** कहा एक मैं आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे॥ भरतु राम ही की अनुहारी। सहसा

लखि न सकहिं नर नारी॥3॥

भावार्थ:

एक ने कहा- मैंने आज ही उन्हें देखा है, इतने सुंदर हैं, मानो ब्रह्माजी ने उन्हें अपने हाथों सँवारा है। भरत तो श्री रामचन्द्रजी की ही शकल-सूरत के हैं। स्त्री-पुरुष उन्हें सहसा पहचान नहीं सकते॥3॥

*** लखनु सत्रुसूदनु एकरूपा। नख सिख ते सब अंग अनूपा॥ मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं। उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं॥4॥

भावार्थ:

लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों का एक रूप है। दोनों के नख से शिखा तक सभी अंग अनुपम हैं। मन को बड़े अच्छे लगते हैं, पर मुख से उनका वर्णन नहीं हो सकता। उनकी उपमा के योग्य तीनों लोकों में कोई नहीं है॥4॥

छन्द :

*** उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं। बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं॥ पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं॥ ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

भावार्थ:

दास तुलसी कहता है कवि और कोविद (विद्वान) कहते हैं, इनकी उपमा कहीं कोई नहीं है। बल, विनय, विद्या, शील और शोभा के समुद्र इनके समान ये ही हैं। जनकपुर की सब स्त्रियाँ आँचल फैलाकर विधाता को यह वचन (विनती) सुनाती हैं कि चारों भाइयों का विवाह इसी नगर में हो और हम सब सुंदर मंगल गावें। सोरठा :

*** कहहिं परस्पर नारि बारि बिलोचन पुलक तन। सखि सबु करब पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ॥311॥

भावार्थ:

नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरकर पुलकित शरीर से स्त्रियाँ आपस में कह रही हैं कि हे सखी! दोनों राजा पुण्य के समुद्र हैं त्रिपुरारी शिवजी सब मनोरथ पूर्ण करेंगे॥311॥

चौपाई :

*** एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। आनँद उमगि उमगि उर भरहीं॥ जे नृप सीय स्वयंबर आए। देखि बंधु सब तिन्ह सुख पाए॥1॥

भावार्थ:

इस प्रकार सब मनोरथ कर रही हैं और हृदय को उमंग-उमंगकर (उत्साहपूर्वक) आनंद से भर रही हैं। सीताजी के स्वयंवर में जो राजा आए थे, उन्होंने भी चारों भाइयों को देखकर सुख पाया॥1॥

*** कहत राम जसु बिसद बिसाला। निज निज भवन गए महिपाला॥ गए बीति कछु दिन एहि

भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती॥2॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी का निर्मल और महान यश कहते हुए राजा लोग अपने-अपने घर गए। इस प्रकार कुछ दिन बीत गए। जनकपुर निवासी और बाराती सभी बड़े आनंदित हैं॥2॥

*** मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहनु मासु सुहावा॥ ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू। लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू॥3॥

भावार्थ:

मंगलों का मूल लग्न का दिन आ गया। हेमंत ऋतु और सुहावना अगहन का महीना था। ग्रह तिथि, नक्षत्र, योग और वार श्रेष्ठ थे। लग्न (मुहूर्त) शोधकर ब्रह्माजी ने उस पर विचार किया,॥3॥

*** पठै दीन्हि नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥ सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहिं जोतिषी आहिं बिधाता॥4॥

भावार्थ:

और उस (लग्न पत्रिका) को नारदजी के हाथ (जनकजी के यहाँ) भेज दिया। जनकजी के ज्योतिषियों ने भी वही गणना कर रखी थी। जब सब लोगों ने यह बात सुनी तब वे कहने लगे- यहाँ के ज्योतिषी भी ब्रह्मा ही हैं॥4॥

दोहा :

*** धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल। बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥312॥

भावार्थ:

निर्मल और सभी सुंदर मंगलों की मूल गोधूलि की पवित्र बेला आ गई और अनुकूल शकुन होने लगे, यह जानकर ब्राह्मणों ने जनकजी से कहा॥312॥

चौपाई :

*** उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा॥ सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब ल्याए॥1॥

भावार्थ:

तब राजा जनक ने पुरोहित शतानंदजी से कहा कि अब देरी का क्या कारण है। तब शतानंदजी ने मंत्रियों को बुलाया। वे सब मंगल का सामान सजाकर ले आए॥1॥

*** संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे॥ सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं बेद धुनि बिप्र पुनीता॥2॥

भावार्थ:

शंख, नगाड़े, ढोल और बहुत से बाजे बजने लगे तथा मंगल कलश और शुभ शकुन की वस्तुएँ (दधि, दूर्वा आदि) सजाई गईं। सुंदर सुहागिन स्त्रियाँ गीत गा रही हैं और पवित्र ब्राह्मण वेद की

ध्वनि कर रहे हैं॥2॥

*** लेन चले सादर एहि भाँती। गए जहाँ जनवास बराती॥ कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू॥3॥

भावार्थ:

सब लोग इस प्रकार आदरपूर्वक बारात को लेने चले और जहाँ बारातियों का जनवासा था, वहाँ गए। अवधपति दशरथजी का समाज (वैभव) देखकर उनको देवराज इन्द्र भी बहुत ही तुच्छ लगने लगे॥3॥

*** भयउ समउ अब धारिअ पाऊ। यह सुनि परा निसानहिं घाऊ ॥ गुरहि पूछि करि कुल बिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥4॥

भावार्थ:

(उन्होंने जाकर विनती की-) समय हो गया, अब पधारिए। यह सुनते ही नगाड़ों पर चोट पड़ी। गुरु वशिष्ठजी से पूछकर और कुल की सब रीतियों को करके राजा दशरथजी मुनियोंऔर साधुओं के समाज को साथ लेकर चले॥4॥

दोहा :

*** भाग्य बिभव अवधेस कर देखि देव ब्रह्मादि। लगे सराहन सहस मुख जानि जनम निज बादि॥313॥

भावार्थ:

अवध नरेश दशरथजी का भाग्य और वैभव देखकर और अपना जन्म व्यर्थ समझकर, ब्रह्माजी आदि देवता हजारों मुखों से उसकी सराहना करने लगे॥313॥

चौपाई :

*** सुरन्ह सुमंगल अवसरु जाना। बरषहिं सुमन बजाइ निसाना॥ सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमानन्हि नाना जूथा॥1॥

भावार्थ:

देवगण सुंदर मंगल का अवसर जानकर, नगाड़े बजा-बजाकर फूल बरसाते हैं। शिवजी, ब्रह्माजी आदि देववृन्द यूथ (टोलियाँ) बना-बनाकर विमानों पर जा चढ़े॥1॥

*** प्रेम पुलक तन हृदयँ उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू॥ देखि जनकपुरु सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे॥2॥

भावार्थ:

और प्रेम से पुलकित शरीर हो तथा हृदय में उत्साह भरकर श्री रामचन्द्रजी का विवाह देखने चले। जनकपुर को देखकर देवता इतने अनुरक्त हो गए कि उन सबकोअपने-अपने लोक बहुत तुच्छ लगने लगे॥2॥

*** चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना। नगर नारि नर रूप निधाना।

सुघर सुधरम सुसील सुजाना॥3॥

भावार्थ:

विचित्र मंडप को तथा नाना प्रकार की सब अलौकिक रचनाओं को वे चकित होकर देख रहे हैं। नगर के स्त्री-पुरुष रूप के भंडार, सुघड़, श्रेष्ठ धर्मात्मा, सुशील और सुजान हैं॥3॥

*** तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारीं। भए नखत जनु बिधु उजिआरीं॥ बिधिहि भयउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥4॥

भावार्थ:

उन्हें देखकर सब देवता और देवांगनाएँ ऐसे प्रभाहीन हो गए जैसे चन्द्रमा के उजियाले में तारागण फीके पड़ जाते हैं। ब्रह्माजी को विशेष आश्चर्य हुआ, क्योंकि वहाँ उन्होंने अपनी कोई करनी (रचना) तो कहीं देखी ही नहीं॥4॥

दोहा :

*** सिवँ समुझाए देव सब जनि आचरज भुलाहु। हृदयँ बिचारहु धीर धरि सिय रघुबीर बिआहु॥314॥

भावार्थ:

तब शिवजी ने सब देवताओं को समझाया कि तुम लोग आश्चर्य में मत भूलो। हृदय में धीरज धरकर विचार तो करो कि यह (भगवान की महामहिमामयी निजशक्ति) श्री सीताजी का और (अखिल ब्रह्माण्डों के परम ईश्वर साक्षात् भगवान) श्री रामचन्द्रजी का विवाह है॥314॥

चौपाई :

*** जिन्ह कर नामु लेत जग माहीं। सकल अमंगल मूल नसाहीं॥ करतल होहिं पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी॥1॥

भावार्थ:

जिनका नाम लेते ही जगत में सारे अमंगलों की जड़ कट जाती है और चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) मुट्ठी में आ जाते हैं, ये वही (जगत के माता-पिता) श्री सीतारामजी हैं, काम के शत्रु शिवजी ने ऐसा कहा॥1॥

*** एहि बिधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगें बर बसह चलावा॥ देवन्ह देखे दसरथु जाता। महामोद मन पुलकित गाता॥2॥

भावार्थ:

इस प्रकार शिवजी ने देवताओं को समझाया और फिर अपने श्रेष्ठ बैल नंदीश्वर को आगे बढ़ाया। देवताओं ने देखा कि दशरथजी मन में बड़े ही प्रसन्न और शरीर से पुलकित हुए चले जा रहे हैं॥2॥

*** साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरें करहिं सुख सेवा॥ सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी॥3॥

भावार्थ:

उनके साथ (परम हर्षयुक्त) साधुओं और ब्राह्मणों की मंडली ऐसी शोभा दे रही है, मानो समस्त सुख शरीर धारण करके उनकी सेवा कर रहे हों। चारों सुंदर पुत्रसाथ में ऐसे सुशोभित हैं, मानो सम्पूर्ण मोक्ष (सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य) शरीर धारण किए हुए हों॥3॥

*** मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी॥ पुनि रामहि बिलोकि हियँ हरषे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरषे॥4॥

भावार्थ:

मरकतमणि और सुवर्ण के रंग की सुंदर जोड़ियों को देखकर देवताओं को कम प्रीति नहीं हुई (अर्थात्‌ बहुत ही प्रीति हुई)। फिर रामचन्द्रजी को देखकर वे हृदय में (अत्यन्त) हर्षित हुए और राजा की सराहना करके उन्होंने फूल बरसाए॥4॥

दोहा :

*** राम रूपु नख सिख सुभग बारहिं बार निहारि। पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥315॥

भावार्थ:

नख से शिखा तक श्री रामचन्द्रजी के सुंदर रूप को बार-बार देखते हुए पार्वतीजीसहित श्री शिवजी का शरीर पुलकित हो गया और उनके नेत्र (प्रेमाश्रुओं के) जल से भर गए॥315॥